एक चूज़े की यात्रा

एक दिन माँ-बाबा ने मुझसे कहा कि मैं कुछ दिनों के लिए अपनी दादी के घर जा सकती हूँ। यह तो उनको भी मालूम था कि वे हज़ारों मील दूर रहती हैं – इदाहो के पहाड़ों के उस पार!

फिर कई दिनों तक इस पर कोई बात नहीं हुई। मैंने ही एक दिन माँ से पूछा। उन्होंने लम्बी आह भरी। सिर हिलाया और काम में लगी रहीं। जब बाबा से पूछा तो बोले, "मे बेटा, इतने पैसे कहाँ हैं? रेलगाड़ी से वहाँ तक जाने में पचपन डॉलर लग जाएँगे। ऐसा करो, तुम अगले साल चली जाना।"

मैं एक साल इन्तज़ार नहीं कर सकती थी! अगले दिन माँ ने मुझे एक भारी कोट और टोप पहनाकर बाहर बर्फ में खेलने भेजा। और मैं सीधे एलक्ज़ेंडर महाशय की दुकान में जा पहुँची। वे सीढ़ी पर चढ़े हुए थे। मुझे देखते ही चहककर "हैलो" कहा।

मैं खुद को रोक न सकी। मुझे काम चाहिए। "रेल के टिकिट के लिए पैसे जुटाने हैं मुझे।"

"काम! काश मैं ऐसा कर पाता, मे। देखो यहाँ के सारे काम बड़ों के लिए ही हैं।" सीढ़ी से उतरते हुए वे बोले।

और फिर मेरी रोनी सूरत को देखते हुए वे टॉफी की बरनी खोलने लगे। पर टॉफी की मिठास भी मेरे दुख को कम न कर पाई।

उस रात जब बाबा काम से आए तो चीज़ें और ज़्यादा बिगड़ी हुई लगीं। वे धीरे-धीरे माँ से कुछ कह रहे थे। बीच-बीच में दोनों सिर उठा कर मुझे देखते भी जा रहे थे। और फिर मुझे सुला दिया गया। इतनी जल्दी! मुझे बहुत बुरा लगा।

अगली सुबह जब माँ ने मुझे उठाया तो चारों तरफ एकदम अँधेरा था। मैं घबराई। बाबा का छोटा बैग दरवाज़े के पास रखा था। मैंने पूछा, "हम कहाँ जा रहे हैं?" वे मुस्कुराते हुए बोलीं, "चलो, नाश्ता कर लो फटाफट।"

इतने में हलकी-सी दस्तक हुई। बाबा ने दरवाज़ा खोला। सामने हमारे एक रिश्तेदार लियोनार्ड खड़े थे।

"जल्दी करो मे, हमें लियोनार्ड के साथ पोस्टऑफिस जाना है।" बाबा बैग उठाते हुए बोले। माँ मेरे कोट की सिलवटें सही करने में लगी थीं। मैंने मुँह खोला ही था कि बाबा आँख दबाते हुए बोले, "न, न कोई सवाल मत करना।"

माँ ने मुझे गले लगाया, मेरा माथा चूमा और मैं बाबा का हाथ थामे बाहर आ गई।

हम ग्रैंगविल पोस्टऑफिस पहुँचे। गोंद, कैनवास के बैग और लकड़ी के चिकने फर्श की मिली-जुली अजीब-सी गँध आने लगी थी। तब

तक बाबा पोस्टमास्टर के पास पहुँच गए थे। "डाक के नए नियमों की सूची तुम तक पहुँच गई होगी। मुझे पता है कि आजकल 50 पाउंड (लगभग 22 किलो) वज़न तक की सामग्री पार्सल भेजे जा सकते हैं। लेकिन कैसी-कैसी चीज़ें पार्सल से भेजी जा सकती हैं?"

मिस्टर पार्किन्स ने अजीब-सी निगाहों से बाबा को घूरते हुए पूछा, "आपके दिमाग में क्या चल रहा है, जॉन?"

"यह मेरी बेटी मे है। मैं इसे डाक से लुइसटन पार्सल करना चाहता हूँ। और आपको तो पता ही है कि लिओनार्ड रेल में डाक के डिब्बे की देख-रेख करता है। यह हमारे पार्सल का भी ख्याल कर लेगा।"

"हाँ, हाँ क्यों नहीं।" लियोनार्ड बोला।

"मैं बाबा की इस तरकीब से पूरी तरह हैरान थी।" मिस्टर पार्किन्स का भी कुछ ऐसा ही हाल था, "मे को डाक से भेजेंगे?" वे बुदबुदाए।

"देखते हैं... डाक के नियम बताते हैं कि डाक से छिपकली, कीड़े या कोई दूसरी बदबूदार चीज़ें नहीं भेज सकते हैं।" मिस्टर पार्किंस ने चश्मे में से मुझे देखा और हवा में सूँघते से बोले, "मेरे ख्याल से यह टेस्ट तो तुमने पास कर लिया है।"

"और लड़कियाँ...? क्या मुझे डाक से भेजा जा सकता है?"

"भई, नियमों की किताब में बच्चों के बारे में तो कुछ नहीं कहा गया है। लेकिन हाँ, चूज़े ज़रूर भेजे जा सकते हैं।" मिस्टर पार्किन्स मुस्कुराते हुए बोले। "देखें, तुम्हारा और तुम्हारे बैग का वज़न कितना है?"

मैं फौरन एक बड़े-से तराजू पर चढ़ गई। बाबा ने मेरा बैग मेरे पास रख दिया।

"48 पाउण्ड और 8 सेंट। आज तक का दर्ज सबसे बड़ा चूज़ा!"

फिर एक चार्ट पर उँगली फेरते हुए वे बोले, "मे को ग्रैंगविल से लुइसटन भेजने का खर्च है 53 सेंट (लगभग 132 रुपए) । तो लियोनार्ड इस रेलगाड़ी में तुम्हें कुछ मुर्गियों का भी ख्याल रखना होगा, हूँ।" वे शरारत भरे अन्दाज़ में बोले।

कोई कुछ बोलता इससे पहले ही मिस्टर पार्किंस ने मेरी कोट पर 53 सेंट का डाक-टिकिट चिपका दिया था। साथ में एक पर्ची भी थी जिसपर दादी का पता लिखा था।

यह एक सच्ची कहानी है। 1 जनवरी 1913 के दिन अमरीकी डाक विभाग ने घरेलू पार्सल सेवा शुरू की थी। और फरवरी 1914 के दिन पाँच साल की शार्लट मे को ग्रैग्विल से लुइसटन, इडाहो तक चूज़ों की श्रेणी में बतौर पार्सल भेजा गया। कौन ऐसा बच्चा होगा जिसने बन्द डिब्बे में बैठकर नानी के घर जाने की कल्पना न की होगी!

उन दिनों सड़कें भी इतनी अच्छी न थीं कि 75 मील का दूभर पहाड़ी सफर तय किया जा सके। ट्रेन ही यात्रा का सबसे उपयुक्त ज़रिया था। डाक और टेलीग्राफ के अलावा किसी और तरीके से सन्देश पहुँचाना काफी कठिन काम था। मे को भेजा जाना इतना अचानक तय हुआ कि दादी मेरी को इसकी खबर भी न की जा सकी थी। या हो सकता है मे के माता-पिता इस अतिरिक्त खर्च से बचना चाहते थे।

बाबा ने मुझे गले लगाया और कहा कि मैं दादी को ज़्यादा परेशान न करूँ। उनके जाने के बाद मैं पोस्टऑफिस में एक बण्डल की तरह बैठ गई। लियोनार्ड ने मुझे बाकी डाक के साथ एक गाड़ी में बिठाया और प्लेटफॉर्म पर ले गया। वहाँ एक बड़ा-सा काला इंजन खड़ा था – धुआँ छोड़ता, जंगली सूअर की तरह फुफकारता-सा। मेरे अन्दर सिहरन-सी पैदा हो गई। लगा, जैसे मैं पहले कभी रेल में बैठी ही न हूँ।

रेल पर सारा सामान चढ़ा लेने के बाद लियोनार्ड ने मुझे भी डिब्बे में चढ़ाते हुए कहा, "चलने का समय हो गया, मे।"

ठीक सात बजे रेल मेरे घर से चल दी। दूर पहाड़ों की ओर। कितना रोमांचकारी लग रहा था सब!

डाक वाला डिब्बा एक छोटे-से पोस्ट ऑफिस जैसा ही लग रहा था। लियोनार्ड रास्ते में आने वाले शहरों में बाँटी जाने वाली डाक की छँटाई करने लगे। मैं पास रखे स्टोव के पास दुबककर बैठ गई – ताकि गर्माहट भी मिलती रहे और नज़रों में भी रहूँ।

लियोनार्ड को जब भी समय मिलता वो मुझे दरवाज़े के पास ले जाते। ओह, क्या बढ़िया नज़ारे थे! कभी हम पहाड़ों के किनारों से गुज़रते, कभी सुरंग में घुसते। गहरी-गहरी खाइयाँ हमने लोहे की टाँगों पर खड़े पुल से पार कीं।

काफी देर बाद जब रेलगाड़ी लैपवाइ नाम के दर्रे के पास पहाड़ों पर से गोल-गोल होती हुई उतरने लगी तो मेरे पेट में कुछ अजीब-अजीब-सा होने लगा। उल्टी-सी होने को आई। मैं ताज़ी हवा लेने दरवाज़े के पास दौड़ने ही वाली थी कि एक गुस्सैल आवाज़ कानों में पड़ी। "लियोनार्ड बेहतर है यह लड़की टिकिट लेले या निकाले पैसे...।" ये हैरी मॉरिस थे। गाड़ी के टिकिट चैकर। इस पर लियोनार्ड बोले, जनाब, यह सवारी नहीं सामान है। देखिए, इसके कोट पर लगी यह चिप्पी।

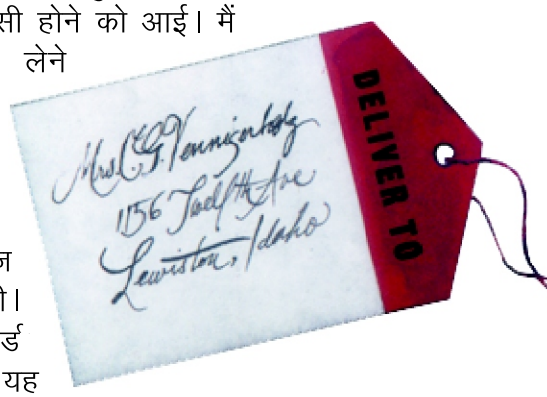

मॉरिस ज़ोर से हँस पड़े। और चले गए।

मिस्टर मॉरिस की डाँट ने मेरे पेट की गुड़गुड़ाहट को ठीक कर दिया था। मुझे भूख भी लग आई थी। लियोनार्ड ने कहा कि खाना तो दादी के घर ही मिलेगा। ट्रेन स्वीटवॉटर और जोसेफ जैसे दो-एक शहरों में रुकने के बाद लुइसटन पहुँची। यह आखरी स्टेशन था। कुछ देर बाद लिओनार्ड ने मेरा हाथ पकड़ा और इस डाक को छोड़ने चल पड़ा।

दादी को देखते ही मैं दौड़ पड़ी। माँ-बाबा ने अपनी बात रख ली थी। थोड़ी-बहुत मदद अमरीकी डाक विभाग की भी रही। चकमक

साभार: *मेलिंग मे*
लेखक: माइकल ओ टनेल
चित्रकार: टेड रैण्ड